ISSN 2278-8808
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

ऋग्वैदिक दार्शनिक सूक्तों की समीक्षा

Birpal Singh, Ph. D.

Head – Department Of Sanskrit, Government College Gonda Aligarh, U.P.-202123

वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राण है। भारतीय धर्म में जो जीवन शक्ति दृष्टिगोचर होती है, उसका मूल कारण वेद ही है। वेद अक्षय विचारों का मान–सरोवर है, जहॉ से विचारधारा प्रवाहित होकर भारत–भूमि के मष्तिष्क को उर्वर बनाती हुई निरन्तर बहती रहती है। इसी विचार धारा में प्रवाहित ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों ने दर्शन सहित्य की प्रतिष्ठा को बनाये रखा। ऋग्वेद का दशम मण्डल दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें वर्णित हिरण्यगर्भ(10/121), नासदीय(10/129), पुरूष (10/90), वाक सूक्त(10/125) अपनी दार्शनिक गम्भीरता तथा नवीन कल्पना के कारण नितान्त प्रसिद्ध है। नासदीय सूक्त ऋग्वेदीय ऋषियों की अलौकिक दार्शनिक चिन्तन धारा का मौलिक परिचायक है। पुरूष सूक्त अपनी दार्शनिकता, महनीयता, गम्भीरता तथा अन्तर्दृष्टि के लिए नितान्त विख्यात एवं अन्यतम है। इसमें पुरूष के आध्यात्मिक कल्पना का भव्य निदर्शन है। हिरण्यगर्भ सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिब्यक्ति करते हुए 'क' अर्थात् प्रतापति का महत्व वर्णित है।

दार्शनिक सूक्तों की समीक्षाऍ इस प्रकार की जा सकती हैं–

ज्ञानसूक्त– (10/71)

ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों में ज्ञान सूक्त अन्यतम है। यह सूक्त, ब्रह्मज्ञान सूक्त अथवा भाषा सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। दार्शनिक चिन्तन की गम्भीरता की दृष्टि से इस सूक्त का विशेष महत्व है। इस सूक्त के ऋषि आंगिरस बृहस्पति और देवता ज्ञान हैं। इस सूक्त के दस मन्त्र त्रिष्टुप छन्द में हैं, केवल नवम मन्त्र का छन्द जगती है। सायण के अनुसार इस सूक्त में ऋषि ने परम पुरूषार्थ साधन पर ब्रह्मज्ञान की स्तुति की है।[1]

सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि– हे बृहस्पति! प्रथम ही आरम्भ में बालक पदार्थों का नाम रखकर जो कुछ बोलता है, वह उनकी वाणी का सबसे पूर्ण स्वरूप है। इनका जो श्रेष्ठ, शुद्ध और निष्पाप ज्ञान है, उनका वह गुप्त है और वह प्रेम के कारण प्रकट होता है। मन्त्र में प्रयुक्त 'नामधेयं', 'श्रेष्ठं', 'अरिप्रथ' और प्रेणा' पद विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'नामधेय' सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में एक बार प्रयुक्त हुआ है। इस मन्त्र में रचनात्मक प्रवृत्ति की ऐसी मनोदशा का संकेत है, जिसमें गम्भीर अन्तदृष्टि शब्द रूप में स्फुरित हो उठती है, नामधेय का अवलम्ब लेकर। अन्तर्निगूढ़ अवचेतन में छाया की भॉति निहित

है, वही नामधेय के द्वारा मूर्तरूप धारण कर लेता है। यह नामधेया वाक् अर्थों की नित्य नूतन सृष्टि करती है।

सूक्त के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि– जैसे सूप से सत्तू को स्वच्छ कर लेते हैं, वैसे ही बुद्धिमान श्रेष्ठ पुरूष, जिस समय बुद्धिबल से वाणी को प्रस्तुत करते हैं, उस समय वे प्रेमभाव से युक्त ज्ञानीलोग मित्रता के भावों को जानते हैं। उनकी वाणी में कल्याण कारक मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है। साधना के जिस मन के द्वारा शब्दचयन की प्रक्रिया चलती है, वह प्रज्ञान संज्ञक मन तो अपने में सब कुछ समेट लेता है। प्रतीक एवं बिम्ब की सृष्टि के मूल में मन का ही अनिर्वचनीय ब्यापार है, जिससे छनकर आनन्द एवं सौन्दर्य एक साथ रूपायित हो उठते हैं।

ज्ञान–सूक्त का अन्तिम मन्त्र एक बहुत ही गम्भीर तत्व प्रस्तुत करता है। अन्तर्बोध सत्य, गुह्यतत्व जिसे ऋषियों में अभिव्यक्ति मिली है, वही सामवेद के संगीत में, यजुर्वेद के अनुष्ठान में और अथर्ववेद के इहमुत्र काम में अभिव्यक्त है और इन सभी की अभिव्य जना वाणी के द्वारा ही होती है।

देव सूक्त 10/72

जगत् सृष्टि सम्बन्धी सूक्तों में देवसूक्त भी है, जो दशम मण्डल सुक्त 1/72 में उपलब्ध है। इसमें असत् से सत् की उत्पत्ति के क्रम में सृष्टि के उद्भव का वर्णन है। सूक्त के एक मन्त्र में कहा गया है– बृहस्पति या अदिति ने लुहार के समान इन देवों को उत्पन्न किया। देवों के पूर्व युग में आदि–सृष्टि में असत् से सत् उत्पन्न हुआ अर्थात् अव्यक्त ब्रह्म से व्यक्त देवादि उत्पन्न हुए।[2] अन्य सृष्टि विषयक सूक्तों की भॉति दस सूक्त में भी सृष्टि के प्रारम्भ में जल विद्यमान था इस बात का सङे.त मिलता है। सूक्त के सप्तम् मन्त्र में वर्णित है कि– देवों ने वृष्टि के समान समस्त लोकों को आच्छादित कर दिया और समुद्र में निगूढ़ सूर्य को प्रकाशित किया।

सूक्त के आठवें मन्त्र में वर्णित है कि– अदिति के आठ पुत्र उत्पन्न हुए (मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् एवं आदित्य) जिसमें से वह सात को लेकर देवलोक चली गयी और आठवें पुत्र मार्तण्ड (सूर्य) को ऊपर आकाश में छोड़ दिया। तत्पश्चात् प्राणियों के जन्म और मृत्यु के लिए अदिति ने मार्तण्ड को पुनः लाकर द्युलोक में स्थापित किया।

विश्वकर्मा सूक्त 10/81, 82

सम्पूर्ण वेद में केवल ऋग्वेद दशम् मण्डल में हीं विश्वकर्मा को समर्पित सृष्टि सम्बन्धी दो सूक्त मिलते है। प्रजापति के समान विश्वकर्मा उत्त्र ऋग्वैदिक काल में विकसित हो रहे सर्वप्रथम देव का प्रतिनिधित्व करते हैं। पौंात्य विद्वान् ए0वी0 कीथ ने विश्वकर्मा को प्रजापति का अमर पर्याय कहा है।

ऋग्वेद दशम् मण्डल के दोनों सूक्तों 81, 82 में विश्वकर्मा का प्रशस्ति, 'होता' और 'पिता' के रूप में की गयी है। जिसका तात्पर्य है– जो विश्वकर्मा होता सबको ऐश्वर्य प्रदान करने वाला प्रथम इन समस्त लोकों का हवन करके पश्चात् स्वयं का भी अग्नि में हवन करके विराजता है, वह हम सबका पिता है।

वह स्तोत्रादि के आशीर्वाद मन्त्रों से स्वर्गरूप ध्न की इच्छा करता हुआ प्रथम सारे जगत् को व्यापता हुआ, पैंत समीप के लोकों के साथ स्वयं भी अग्नि में प्रविष्ट हुआ।

सूक्त 82 के तीसरे मन्त्र में कहा गया है– जो हमारा पालक, उत्पन्न कर्ता, विशष रूप से जगत् को धारण और पोषण करन`वाला है, जो विश्व के सारे धामों, लोकों और उत्पन्न होने वाले पदार्थो को जानता है। जो समस्त देवों के नाम रखकर, उनके स्थान पर रखने वाला अकेला और अद्वितीय है। उसे अन्य सभी प्राणी पूछते हैं कि 'परमेश्वर कौन है' और यह प्रश्न पूछते उसे प्राप्त करते हैं।

पुरूष सूक्त (10/90)

ऋग्वेद में वर्णित कतिपय प्रसिद्ध सूक्तों में से 'पुरूष सूक्त' एक अति प्रसिद्ध दार्शनिक सूक्त है। इस सूक्त में यह बताया गया है कि स्थावर जंगम सभी प्राणियों का उत्पादक स्वयं परमात्मा तथा समस्त जीवों के लिए भोग अपवर्गा प्रदान करने वाला है। यह सूक्त स्तुतिपरक न होकर तथ्य निरूपण परक है। यह सूक्त पाठभेद और क्रमभेद से वाजसनेयि संहिता, अथर्ववेद संहिता और तैत्तिरीय आरण्यक में भी प्रापत होता है।

सर्वानुक्रमणी के अनुसार इस सूक्त के ऋषि नारायण, देवता पुरूष और छन्द अनुष्टुप् एवं अन्तिम त्रिष्टुप् है। सामान्य रूप से प्रचलित मत के अनुसार इससे सृष्टि की आरम्भिक अवस्था का दार्शनिक–चिन्तन प्रकट होता है। इसलिए विद्वानों ने इसकी विविध ब्याख्यायें की है। इस सूक्त में सृष्टि के मूलकारण पुरूष और उससे उत्पन्न जगत् सदृश गम्भीर विषयों का विशेष रूप से प्रतिपादन है। फिर भी इसका महत्व सबसे अधिक है। यह न केवल वैदिक ऋषियों के आध्यात्मिक विचारों का बोधक है, अपितु सामान्य रूप से उनकी याज्ञिक, सांस्कृतिक और सामाजिक धारणाओं का भी परिचायक है।

पुरूष सूक्त का देवता 'पुरूष' अनन्त और महिमाशाली है। आचार्य सायण ने पुरूष को श्रुति प्रसिद्ध अब्यक्त महदादि से विलक्षण चेतन विराट्–तत्त्व कहा है। वेद भाष्यकार वेंकट माधव ने पुरूष को 'प्रत्यक्ष पुरूष' और महीधर ने अब्यक्त महदादि विलक्षण चेतन पुरूष की संबा दी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुरूष को 'सर्वत्रपूर्ण जगदीश्वर' और वेलणकर ने 'सर्वव्यापी पुरूषोत्तम' कहा है। सांख्य दर्शन में पुरूष–प्रकृति विकृतिरहित, अनादि और अपरिणामी कहा गया है। सत्यभूषण योगी ने पुरूष शब्द से अनेक गुण विशिष्ट मनुष्य का अर्थ ग्रहण किया है।6

हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121)

इस रहस्यमय सृष्टि का मूल कारण क्या है? उसके मूल–कारणों से संसार की उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रकार की जिज्ञासा दार्शनिक चिन्तन का आधार है। इसके समाधान में अनेक विचार उपलब्ध हैं, जो गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने भी इस सम्बन्ध में गहन विचार किये हैं, जिसका संकेत दशम मण्डल के दार्शनिक सूक्तों में मिलता है। उनमें सृष्टि के मूलतत्व को हिरण्यगर्भ, पुरुष, बृहस्पति, विश्वकर्मा आदि नाम देकर इस सहस्य को सुलझाने का प्रयास किया गया है। उन सूक्तों में हिरण्यगर्भ सूक्त का स्थान महत्वपूर्ण है।

हिरण्यगर्भ संज्ञक आदि तत्व के महत्व का वर्णन करनेवाले इस सूक्त के देवता 'प्रजापति' हैं, जिसे 'क' संज्ञा दी गयी है। प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' का यह रूप प्रजापति के नाम के रूप में इसलिए प्रयुक्त हुआ है कि उसका स्वरूप विदित नहीं है।3शतपथ ब्राह्मण में भी प्रजापति को 'क' नाम से सम्बोधित किया गया है।1 प्रस्तुत सूक्त में दश मन्त्र हैं। प्रथम नौ मन्त्र का अन्तिम चरण– ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' है। इस मन्त्रांश का अर्थ भारतीय विद्वान् प्रजापति करते हैं, किन्तु पाश्चात्य विद्वान् आरम्भिक युग के मानव की उत्कर्शित मनोदशा का संकेत पाते हैं। सृष्टि के रहस्यमय स्वरूप का जिज्ञासु मनुष्य उस तत्व के यथार्थ स्वरूप को जानना चाहता है। लिसने सम्पूर्ण विश्व की रचना की है। प्रत्येक मन्त्र के प्रथम तीन चरण उस देव तत्व के गुणों एवं कर्मों पर प्रकाश डालते हैं। सूक्त के अन्तिम मन्त्र में प्रजापति को सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं कि– वह देव जिसके विषय में जिज्ञासा की गयी है कोई अन्य नहीं प्रजापति हीं है। जो समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाला, प्राणिमात्र में व्याप्त तथा सबका पालन–पोषण करनेवाला है। सूक्त में वर्णित हिरण्यगर्भ या सुवर्णमय अण्ड सृष्टि के आरम्भ में स्वयं आविर्भूत वृहद् अण्डाकार तत्व है, जिसके विषय में सप्तम् मन्त्र में कहा गया है कि– 'महान अग्न्यादि समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला और हिरण्यमय महान अण्ड को धारण करनेवाला, जल ही सब जगत् को व्यापता है, जिससे देवों का अद्वितीय प्राण उत्पन्न हुआ।

वाक् सूक्त 10/125

ऋग्वेद दशम मण्डल में वर्णित अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् द्वारा दृष्ट वाक् सूक्त को प्रायः विद्वानों ने दार्शनिक माना है। अनुवर्तीयुगीन दार्शनिक विचारों के कारण यह सूक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस सूक्त में वाणी की प्रशंसा की गयी है। इस सूक्त में परमेंश्वरी ज्ञानशक्ति वसुओं, रुद्रों, आदित्यों, सूर्य, चन्द्रमा को धारण करन`वाली, सर्वत्र व्याप्त, मनुष्य को ब्रह्मा, ऋषि बनाने वाली सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है इत्यादि विषय हैं। निरुक्तकार यास्क ने इस प्रकार के मन्त्रों का आध्यात्मिकता से परिपूर्ण कहा है। विश्व के सभी व्यापार वाक् की महिमा से ही परिचित हो हैं। प्रस्तुत सूक्त में वाग्देवी परमात्मा के साथ तादात्म का अनुभव करती हुई सर्वत्र विश्व के अणु एवं परमाणुओं में अपने को अनुस्यूत देखती है एवं अन्यन्त उदात्त भावना से युक्त शब्दों में आत्मस्तुति करती हैं।

वाक् शक्ति की योनि (उत्पत्ति स्थान) समुद्र परमात्मा है। परमतत्व की एकता को अनेकता में परिवर्तित करने वाली परमात्माशक्ति वाक् है। नाम रूपनात्मक जगत् की सृष्टि इसी से होती है। वाक् ही स्वयं को विश्वरूप में स्थापित कर उसे धारण करती है। वाक् ही वास्तविक कर्त्री है। सम्पूर्ण नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि वाक् का ही विकार कहा गया है।4 शक्तिमान परमात्मा के विना वाक्शक्ति का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अतएव वाक् को ही ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्म कहा गया है। वाक् को प्रजापति भी कहा गया है।6 इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्तत्व की सर्जना शक्ति को भी वाक् निर्दिष्ट करती है। वाक् परमात्मा से अविधा–भाव सम्बन्ध रखती है। इसलिए इस सूक्त का आरम्भ ''अहम्'' पद से हुआ है।7 वाक् युक्त ब्रह्म ही 'अहं' नाम से अभिहित है। वाक् ने स्वयं 'अहं' पद से ईश्वर के साथ अपना अभेद भाव व्यक्त

किया है– मैं सब जगत् की स्वमिनी हूॅ, धन प्रदान करने वाली हूॅ। यज्ञार्ह देवों में मुख्य और ज्ञानवती हूॅ। निघण्टु के अनुसार ''राष्ट्री'' ईश्वर के चार नामों में से एक है। यहॉ ईश्वर और वाक् शक्तिमान् और शक्ति का अपार्थक्य है, अतः इस सूक्त का प्ररम्भ भी 'अहम्' शब्द से होना विशेष महत्व रखता है। वाग्युक्त ब्रह्म ही वैविध्य की ओर अग्रसर होता है। वह रुद्रों, वसुओं और आदित्यों के साथ विचरण करती है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि प्राण ही वसुरूप है क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत् को बसाते हैं। प्राणों की प्राण क्रिया को वाक् ही प्ररित करती है। जब ये प्राण शरीर से अलग होते हैं तब सम्बन्धियों को रुलातें हैं, तब वे रुद्र बन जाते हैं। रोदन के कारण प्राण ही रुर्द कहलाते हैं। पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पॉच कर्मेन्द्रियॉ और मन ये ग्यारह प्राण ही ग्यारह रुद्र रूप में हैं। ये प्राण जब कर्मफल भोग का क्षय हो जाने पर जीव के शरीर से उत्क्रमण करते हैं तो सगे सम्बन्धी रोतें हैं, अतः प्राणरूपी रुद्रों की उत्क्रमण–शक्ति की प्रेरक वाक् ही है।

नासदीय सूक्त (10/121)

ऋग्वेद में सृष्टि विषयक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूक्त नासदीय सूक्त है यह उदात्त और अधिक अमुर्त है। वैदिक ऋषियों ने चिन्तय अनुसंधान के द्वारा सृष्टि का जो आरम्भिक स्वरूप प्राप्त किया, उसकी रूपरेखा प्रस्तुत सूक्त नासदीय सूक्त में संग्रहित किया गया है सृष्टि के रहस्य का दार्शनिक वर्णन इससे अधिक किसी धर्म में उपलब्ध नहीं है। भारतीय दर्शन के इतिहास में इस सृष्टि विषयक सूक्त का विशेष महत्व है। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष द्रष्टा कें रूप मे कोई वर्णन नही कर सकता, इस विषय का संकेत मात्र इस सूक्त में मिलता है।1 सूक्त के प्रस्तुत मन्त्र का भावार्थ है– इस सारी सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इसे कोई नही जानता, क्योकि उस रहस्य को जानने वाले विद्वानों की उत्पत्ति भी बाद मे हुई सृष्टि की उत्पत्ति के विषय मे मुख्य रूप से दो विचार धारा प्रचलित है।–

1– असतः सज्जायते – अर्थत असत् से सत् उत्पन्न होता है।

2– सतः सज्जायते – अर्थात सत् से सत् उत्पन्न होता है।

ऋग्वेद दशम मण्डल के सूक्त 72 मे एक स्थन पर असत से सत की उत्पत्ति का कथन है।2 सूक्त के इस मन्त्र मे यह कहा गया है कि– वृहस्पति या अदिति ने लुहार के समान इन दोनो को उत्पन्न किया अर्थात जिस प्रकार लुहार लोहे को निहाई पर रख कर और उसे पीट–पीट कर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करता है उसी प्रकार–वृहस्पति या अदिति ने ने विभिन्न देवों को उत्पन्न किया।नासदीयसूक्त में सत् तथा असत् दोनों की सत्ता का निषेध है। इसके लिए ''अप्रकेतम्'' पद का प्रयोग किया गया है। अर्थात् उस समय इस दृश्यमान् जगत् का चिन्ह भी नहीं था। परन्तु इससे यह नहीं प्रतीत होता है कि इस जगत् कि सत्ता कहीं पर नहीं थी। यह जगत् अपने कारणभूत प्रकृति में लीन था, जो अव्यक्त थी। सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में इसी भाव को इस रूप में कहा गया है– सर्वप्रथम परमात्मा के अन्दर सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा हुई। उससे सब सृष्टि का उपादान कारणभूत बीज

पैदा हुआ। यह बीजरूपी सत् पदार्थ ब्रह्मरूपी असत् से पैदा हुआ। सूक्त के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि– उस समय केवल एक ही तत्व था वह बिना किसी आश्रय के अपनी सत्ता में स्थित था वह सबसे परे था।[4] छादोग्योपनिषद् में इसको इस प्रकार कहा गया है– ''भगवन् वह तत्त्व किसमें प्रतिष्ठित है? अपनी महिमा में अथवा अपनी महिमा में भी नहीं है।''[5] आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्य में ''यदि वा न महिम्नि'' इस पद की व्याख्या इस प्रकार भी है– परमार्थतः ही पूछते हो तो हमारा यह कथन है कि– वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित नहीं है।[6] इस प्रकार वेद प्रतिपादित उस तत्त्व के अनाश्रय भाव का समर्थन उपनिषद् में भी किया गया है। मनुस्मृति में इसको अतीन्द्रिय, ग्राह्य, सूक्ष्म, अव्यक्त तथा सनातन कहा गया है। यह सभी भूतों को अपने में समेटे हुए है, यह सर्वथा अचिन्त्य और स्वयंभू है।[7]

अन्य सूक्तों के दार्शनिक मन्त्र–

उपर्युक्त दार्शनिक सूक्तों कें अतिरिक्त अन्य सूक्तों के कतिपय मन्त्रों में भी दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है। वैदिक ऋषियों के द्वारा विश्व को तीन भागों में विभाजित किया गया है– पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग। ऋग्वेद दशम् मण्डल के एक मन्त्र में भूमि को देवों की माता और नक्षत्र मण्डित द्यूलोक को भूमि के पति के रूप में सम्बोधित किया गया है। पृथिवी और द्यूलोक सबके माता–पिता हैं। वे सभी प्राणियों को जीवन तथा जीवन निर्वाह के लिए साधन प्रदान करते हैं।

ऋग्वेद में प्रायः इन्हें द्वित्व की संज्ञा दी गयी है। सूर्य, अग्नि, वायु, और पर्जन्य ये सभी द्यावापृथिवी के सन्तति है। वे देव और मानव दोनों के माता पिता है। ऋग्वेद में द्यावापृथिवी की तुलना रभचक्र से की गयी है। द्यूलोक और पृथिवी की युगलरूप से प्रख्याति है। इन्हें रोदसी, क्रन्दसी, द्यावापृथिवी आदि संयुक्त नाम दिया गया है। अन्तरिक्ष के त्रिस्तरीय उपविभाजन अथवा त्रिरजांसि का भी उल्लेख मिलता है।

135 सूक्त के मन्त्रों में वर्णित तथ्य कठोपनिष्द् में प्रतिपादित नचिकेतोपाख्यान का मूल माना गया है। सायणभाष्य में इसका स्पष्ट सङ्केत दिया गया है। 159वें सूक्त के तीन मन्त्रों में पुलोंमा की पुत्री शची स्वयं को शक्तिमती बताती हुई अपने को ही सूर्य, केतु आदि रूपों में व्यक्त करती है। यह तथ्य उपनिष्द् में वर्णित ''अहम् ब्रह्मास्मि'' इस अनुभव वाक्य की अवधारण को प्रकट करता है।

177वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में त्रिगुणात्मिका माया का सङ्केत मिलता है। सायण नें 'असुरस्य मायया' का अर्थ– आसन कुशलस्थ सर्वोपाधिरहित परब्रह्म से सम्बन्धित सत्व, रजस्, तमस् गुणों वाली माया किया है।[8]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहॅचते हैं कि ऋग्वेद दशम मण्डल के कुछ प्रसिद्ध दार्शनिक–सूक्त तथा अन्य सूक्तों के भी कुछ दार्शनिक मन्त्र आध्यात्मिक–तत्वों के प्रतिपादक हैं जों परवर्ती दार्शनिक सिद्धान्तों के उपजीव्य माने गये हैं।

संदर्भ

ऋक् सं0 1/71 सायण भाष्य
यजु0 वाजसनेयी सं0 31/1/1–6
अथर्व0 19/6
तै0 आ0 3/12
ऋक् 10/90/1 सायण भाष्य
सांख्यकारिका–3
सत्यभूषण योगी, वेद समुललासः पृ0 80
ऋक् 10/135/1 सायण भाष्य 6. ऋक्0 10/177/1 सायण भाष्य